P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

# भारतीय राष्ट्रवाद और शिक्षा

**सारांश**

वर्तमान राजनीतिक, सांस्कृतिक परिवेश में राष्ट्रवाद एक विवादित विचार बन चुका है। भारत में राष्ट्रवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या रही है, इसने भारत के राजनीतिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों में क्या भूमिका निभायी व भारतीय परिवेश में जहाँ विविधता मूलक समाज की जड़ें बड़ी गहरी रही हैं, वहाँ इस विचार को किस तरह परिभाषित किया गया और इस विचार को आम जनमानस में आत्मसातीकरण कराने में शिक्षा की क्या भूमिका हो सकती है। इस लेख में इन्ही विषयों पर विचार किया गया है।

**मुख्य शब्द :** राष्ट्र, राष्ट्रवाद।

**सुनील कुमार उपाध्याय**
एसोसिएट प्रोफेसर,
शिक्षक–शिक्षा विभाग,
डी0बी0एस0 कॉलेज,
कानपुर, उ0प्र0, भारत

**प्रस्तावना**

राष्ट्रवाद एक सांस्कृतिक अवधारणा है और अपने स्वरूप में जटिल भी। इसीलिए इसे एक परिभाषा में बाँधना हमेशा से मुश्किल रहा है। वैसे इस अवधारणा से भारतीय समाज का सर्वप्रथम परिचय उन्नीसवीं सदी के मध्य में हुआ। पश्चिमी विद्वानों की दृष्टि में राष्ट्रवाद के भावना की अनुपस्थिति भारतीय समाज की प्रमुख खामी भी मानी गयी। हालाँकि यह भी माना गया कि राष्ट्रवाद की अवधारणा भले ही पाश्चात्य और आधुनिक हो पर भारत एक राष्ट्र के रूप में बहुत प्राचीन काल से अस्तित्व में रहा है। राष्ट्र की पश्चिमी अवधारणा जहाँ जाति, नस्ल, धर्म, भाषा, वेश–भूषा, खान–पान, आदि की एकरूपता के आधार पर राष्ट्र को परिभाषित किया गया है, भारत को इस परिभाषा के आधार पर राष्ट्र मानने में पश्चिमी विचारकों को हिचक रही, परन्तु भारत की विशेषता ही विभिन्नता में एकता की रही। हिमालय से हिन्द महासागर तक और बंगाल की खाड़ी से अरब सागर के बीच स्थित भूभाग के लोगों में तमाम विविधताओं के बावजूद हम की भावना रही, उत्तर के बद्रीनाथ से दक्षिण के रामेश्वरम तक, पूरब के जगन्नाथ से पश्चिम के द्वारका तक सभी लोग किसी न किसी कारण आपस में एकता का अनुभव करते रहे, हम एकरूपता पर कभी जोर नही देने वाले लोग रहे पर बावजूद इसके एकता की अदृश्य डोर हमारे बीच हमेशा से बनी रही। इसलिए ऋग्वेद से लेकर वर्तमान संविधान तक हम राष्ट्र होने की अनुगूँज सुनते रहे।

इसी राष्ट्र व उसकी संस्कृति के प्रति आदर व गर्व का भाव राष्ट्रवाद कहलाया। जो भारतीयों में पहले से ही मौजूद थी। लेकिन समस्या तब पैदा हुई जब राष्ट्रवाद के पश्चिमी उपनिवेशवादी हिंसक इतिहास से भारतीय राष्ट्रवाद को जोड़कर देखा जाने लगा और बहुत से विचारकों ने राष्ट्रवाद और देशभक्ति में अन्तर कर राष्ट्रवाद से किनारा करने की बात शुरू कर दी। इस तरह की बातों से राष्ट्रवाद की जड़ें कमजोर भले न हुई हों पर अलगाववादी ताकतों को राष्ट्र की संस्कृति से अलगाव महसूस करने की आजादी जरूर मिली। शिक्षा भी जिसे राष्ट्रवाद की जड़ें मजबूत करने का साधन होना चाहिए था वह भी लोकतंत्र व समाजवाद के नाम पर लोगों को राष्ट्रवाद से दूर ले जाने का साधन बनने लगी। शिक्षा हमारे विचार व व्यवहार परिवर्तन का साधन है। क्या शिक्षा राष्ट्रवाद के विचार के आत्मसातीकरण का साधन बन सकती है ? और अगर बन सकती है तो कैसे ?

इस लिए इस अध्ययन का उद्देश्य शिक्षा राष्ट्रवाद की भावना के आत्मसातीकरण में किस तरह की भूमिका का निर्वहन कर सकती है, इसका अध्ययन करना निर्धारित किया गया।

**अध्ययन के उद्देश्य**

शिक्षा के राष्ट्रवाद की भावना के आत्मसातीकरण में भूमिका का अध्ययन।

**साहित्यावलोकन**

प्रस्तुत अध्ययन के लिए रामधारी सिंह दिनकर की सस्कृति के चार अध्याय, रमन बिहारी लाल के उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अभय कुमार

दूबे के राष्ट्रवाद बनाम देशभक्तिः रवीन्द्रनाथ ठाकुर और इयत्ता की राजनीति (आशीष नन्दी की इल्लिजिटिमेसी ऑफ नेशनलिज्म का हिन्दी अनुवाद), जवाहरलाल नेहरू के भारत एक खोज, रामचन्द्र गुहा के भारतः गांधी के बाद, रामचन्द्र गुहा के ही भारतः नेहरू के बाद व गांधीः भारत से पहले, सर्वपल्ली राधाकृष्णन के द हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ, महात्मा गांधी का हिन्द स्वराज्य, ए.एल. बाशम की द इण्डिया दैट वॉज वण्डर का अध्ययन किया गया।

राष्ट्रवाद की परिभाषा एक ऐसे जन समूह के अन्दर व्याप्त हम की भावना के रूप में की जा सकती है जो कि भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो तथा सांस्कृतिक समानताओं व सामान भावनाओं से एकता के सूत्र में बँधा हो। हालाँकि इस कसौटी पर कसते हुए तमाम पाश्चात्य विद्वानों ने भारत को एक राष्ट्र के रूप में स्वीकृति नहीं दी लेकिन आर्य समाज, ब्रह्म समाज और रामकृष्ण मिशन ने इस पाश्चात्य अवधारणा को कड़ी टक्कर दी और भारत में राष्ट्रीयता के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका भी निभायी।

बंगाल के चिन्तक भूदेव मुखोपाध्याय (1827–1894) राष्ट्रीय अखण्डता के लिए आक्रामक तरफदारी करने वाले सबसे पहले विचारकों में से एक थे। बंकिम चन्द्र के उपन्यास आनन्द मठ का प्रसिद्ध पात्र सन्यासी योद्धा भी जनमानस में राष्ट्रवाद की जड़ें जमाने में एक महत्वपूर्ण पात्र बना। बाद में स्वामी विवेकानन्द ने भारत की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता को यूरोपीय बुद्धिवाद के प्रहारों से बचाकर एक विवेक जन्य आधार भी प्रदान किया। उस दौर में जब राष्ट्रवाद साम्राज्यवादी ताकत से मुकाबला करने का हथियार बन चुकी थी, राष्ट्रवाद को संदेह की दृष्टि से भी देखा जाने लगा था। स्वतंत्रता आन्दोलन में भी समरूप संस्कृति के आधार पर संरचित राष्ट्रवाद के प्रति एक द्वैधवृत्ति दिखने लगी थी। राष्ट्रवाद पर सन्देह करने वाले इन चिंतको ने उसे आधुनिक उपनिवेशवाद के हिंसात्मक अतीत से जोड़कर देखना शुरू कर दिया था। वे स्वतंत्रता आन्दोलन में राष्ट्रवाद के पश्चिमी विचार को अपरिहार्य मानने को तैयार नहीं थे। इन विचारकों में ज्यादातर राष्ट्रवाद को एक प्राक्–आधुनिक अवधारणा मानते थे और उनका ख्याल था कि यह भूमण्डलीय पूंजीवाद की पैदाइश है। उन्हें लगता था कि जैसे ही मानवता इस मध्ययुगीन विचार के मोह पाश से मुक्त होकर पुनर्जागरण के गर्भ से निकल कर आजादी के विचार से जुड़ेगी, वैसे ही राष्ट्रीयताओं की जगह एक विशिष्ट सार्वभौमिकता ले लेगी, जिसका आधार एक बहुलतापूर्ण समाज की जीवन शैलियों में सन्निहित है। इन्हीं विचारों व भारत की सांस्कृतिक विरासत को अपने प्रतिरोध का आधार बना भारत में राष्ट्रवाद को सार्वजनिक चुनौती रवीन्द्र नाथ टैगोर ने दी। वे रवीन्द्र नाथ ही थे जिन्होंने 20वीं सदी की शुरूआत में ही घोषित कर दिया कि –''अगर ईश्वर चाहता तो सारे भारतवासियों को एक ही भाषा बोलने वाला बना सकता था.....भारत की एकता हमेशा से विविधता में एकता के उसूल पर निर्भर थी और रहेगी।''

भारत में शास्त्रीय परम्परा के दायरे में लोक–संस्कृति का जैसा सृजनशील इस्तेमाल रवीन्द्र नाथ टैगोर ने किया है वैसा बहुत कम लोग कर पाये हैं। टैगोर को लगता था कि सांस्कृतिक रूप से टिके रहने के लिए भारत को एक राष्ट्रीय विचारधारा की जरूरत है और उनकी मान्यता थी कि इसके लिए भारत को या तो पश्चिमी राष्ट्रवाद की उस अवधारणा से अपना पिण्ड छुड़ाना पड़ेगा, जिसका आगमन मध्य युग के बाद हुआ है या फिर उसे इस अवधारणा में एकदम नई सारवस्तु का समावेश करना होगा। इसी आग्रह के कारण टैगोर के लिए राष्ट्रवाद धीरे–धीरे अपनी प्रासंगिकता खोता चला गया। उन्हें डर था कि भारतीय राष्ट्र का विचार कहीं भारतीय सभ्यता पर ही प्राथमिकता न हासिल कर ले। वे नहीं चाहते थे कि भारतीयों की जीवन शैली की रक्षा के लिए राष्ट्र–राज्य की काल्पनिक संरचना की कसौटी का प्रयोग किया जाय।

टैगोर के लिए भारत की परम्परा 'नस्लों के आपसी समायोजन' के लिए सक्रिय रहती है और नस्लों के बीच वास्तविक अन्तर को स्वीकार करते हुए एकता का आधार तलाश करती है। उनकी निगाह में भारत की एकता कोई हासिल किये जाने वाला राजनीतिक कार्यक्रम न होकर एक स्थापित सामाजिक हकीकत थी। टैगोर जिस नैतिक संसार की अभिपुष्टि करना चाहते थे उसके केन्द्र में एक विशेष तरह की सार्वभौमिकता थी। एक ऐसी सार्वभौमिकता जो नैतिक और सांस्कृतिक सापेक्षवाद को नकारकर भारत की विशाल और बहुलतावादी समझ को आगे बढ़ाती थी । टैगोर बिना किसी संकोच के यह बात कहते थे कि – ''चूँकि हम भारत के उस पहलू को देखने से चूक गये हैं जिसका सम्पूर्ण विश्व से तादाम्य है, इसलिए हमारे कामों और चिन्तन में एक ऐसा भारत बन गया है जो संकीर्ण और कुम्हलाया हुआ है। इसी भारत के कारण हमारा मतलबीपन अहमियत पाता जा रहा है। जिससे कुछ भी बेहतर नहीं रचा जा सकता।''

रवीन्द्र नाथ टैगोर जिस सार्वभौमिकता की वकालत कर रहे थे उसकी जड़ में स्वदेशचिंता थी जो राष्ट्रवाद का हवाला दिये बिना देश भक्ति की धारणा व्यक्त कर सकती है। रवीन्द्र नाथ ने किसी भी विचारधारा को व्यक्ति पर बल पूर्वक थोपने की वकालत कभी नहीं की। वे व्यक्ति की स्वतंत्रता के इतने प्रबल समर्थक थे कि वे मानवता के हृदय में निवास करना चाहते थे। अपने चिन्तन को टैगोर ने विश्व भावना व विश्व मानव के साथ सम्बद्ध कर लिया था। वे सभ्यता को बहुत से व्यक्तियों का मिला–जुला जीवन मानते थे। उन्होंने संसार के समस्त नागरिकों को एक ही मानवीय सभ्यता के अन्तर्गत लाने का आह्वान किया था। मूलतः वह एक मानवतावादी विचारक थे जिनके विचारों में लोकतन्त्र और विश्व बन्धुत्व की भावनाओं का समावेश था। दो–दो देशों के राष्ट्रगान के रचयिता रवीन्द्र नाथ टैगोर अन्तिम दिनों में राष्ट्रवाद को पश्चिम के अतीत की पैदाइश मान उसके प्रखर आलोचक रहे और मानवतावाद की आधुनिक व्याख्या कर सार्वभौमिकता की वकालत की। लेकिन इसके ठीक उलट गांधी राष्ट्रवाद की पश्चिमी अवधारणा के विरोधी होते हुए भी एक नये तरह के भारतीय राष्ट्रवाद की वकालत करते

हैं, जहाँ अपनी संस्कृति के प्रति लगाव व गर्व प्रतिबिम्बित होता है और यह राष्ट्रवाद समावेशी होते हुए उनके लिए राजनीतिक न्याय के लिए लड़ाई का प्रतीक भी बन जाता है, लेकिन जब अरविन्द टैगोर के राष्ट्रवाद को भौगोलिक अपदेवता मानने के प्रतिक्रिया में राष्ट्रवाद को देव द्वारा नियुक्त एक शक्ति के रूप में देख उग्र राष्ट्रवाद की वकालत करते हैं तब गांधी का राष्ट्रवाद अपने में गहन अन्तर्राष्ट्रवाद को निहित कर किसी भी तरह के बहिष्कारवाद का विरोध करने लगता है। ये राष्ट्रवाद के हिमायती होते हुए भी हिंसक राष्ट्रवाद को अभिशाप कहने में हिचक भी नहीं दिखाते। गांधी की दृष्टि में बहुलता मूलक समावेशी भारतीय समाज के लिए गैर जुझारू राष्ट्रवाद ही उपयुक्त था।

वहीं दूसरी तरफ उनके राजनैतिक शिष्य नेहरू, राष्ट्रीयता और अर्न्तराष्ट्रीयता के बीच समन्वय की बात करते हैं। राष्ट्रीयता की भावना को सामाज्य वादी ताकतों से लड़ने को लाजमी भी मानते हैं। उस दौर में, जब साम्राज्यवाद और देश के अन्दर विभाजन कारी ताकतों, दोनों से लड़ना था तब राष्ट्रीयता की भावना को मजबूती देना एक आवश्यकता भी थी। पर साथ ही नेहरू में टैगोर की विश्व दृष्टि की भी झलक मिलती है, जो बाद के वर्षों में उनकी वैदेशिक नीति में स्पष्ट दिखी भी। यह कहा जा सकता है कि नेहरू गांधी और टैगोर के समन्वय बिन्दु थे, नेहरू के राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रवाद में गांधी और टैगोर दोनो का अक्स दिखाई पड़ता है। देश में तमाम मौकों पर भाषा, धर्म, जाति, के नाम पर हुए आन्दोलनों को बहुलतावाद को स्वीकार करते हुए ही समाप्त किया जा सका,, जो गांधी और टैगोर दोनो की दृष्टि थी।

आज भी तमाम अलगाववादी प्रवृत्तियाँ देश में प्रश्रय पा रही हैं, लेकिन उनसे लड़ने का हथियार एक नए तरह का राष्ट्रवाद ही है, जिसमें बहुलतावाद की भी गुंजाइश है और राष्ट्रीय अखण्डता की भी। हमारे पड़ोस में पाकिस्तान का बँटवारा भाषा के ही नाम पर हुआ, पर तमाम भाषाओं के होने के बावजूद भी हम भाषावाद के नाम पर अलगाववाद को नियंत्रित कर पाए तो इसके पीछे अपने राष्ट्रवाद में विविधता को जगह देना ही रहा। भारतीय राष्ट्रवाद मूलतः पश्चिमी राष्ट्रवाद से अलग किस्म का रहा है, जिसको गांधी, टैगोर, नेहरू ने सींचा, तमाम मतभेदों के बावजूद समन्वय के भारतीय प्रवृत्ति को प्रमुखता दी।

आज आवश्यकता इसी बात की है कि नई पीढ़ी को भी इन मूल्यों से परिचित कराया जाय, इसके लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन बन सकती है। शिक्षा के ही माध्यम से हम राष्ट्रीयता व राष्ट्रवाद की भावना का नयी पीढ़ी में आत्मसातीकरण करा सकते हैं, शिक्षा के ही द्वारा बहुलतावाद के प्रति किसी भी दुराग्रह को समाप्त कर उसे भारतीय राष्ट्रवाद की विशेषता के रूप में स्वीकृत भी करा सकते हैं । इसी तरह के राष्ट्रवाद का भारत में भविष्य भी है और जरूरत भी। शिक्षा को इस काम को अपने हाथ में लेने के लिए तैयार भी होना होगा व आगे भी आना होगा। इसके लिए हमें सभी धर्मों, जातियों, भाषाओं, भौगोलिक क्षेत्रों के प्रति छात्रों में आदर का भाव पैदा करने वाले विषय वस्तु को पाठ्यक्रम में रखना होगा, तमाम सास्कृतिक व गैर शैक्षणिक क्रियाकलापों के माध्यम से भी भारत की विविधता व उसकी बहुलतावादी, सामासिक संस्कृति से परिचित कराना होगा, साथ ही अपनी संस्कृति के साथ दूसरी संस्कृतियों के प्रति उनमें आदर का भाव भी पैदा करना होगा। इसी से उनमें बहुलता मूलक भारतीय राष्ट्रवाद के प्रति सकारात्मक भाव उत्पन्न होगा व भारतीय राष्ट्रवाद को एक गति भी मिलेगी। इसी भावना के आत्मसातीकरण से राष्ट्रवाद को आलोचकों के प्रहारों से भी बचाया जा सकेगा, और अलगाववादी ताकतों पर निंयत्रण भी किया जा सकेगा, जो भारतीय राष्ट्र की एकता व अखण्डता के लिए आवश्यक भी है।

शिक्षा के द्वारा ही इस नए तरह के भारतीय राष्ट्रवाद के प्रति लोगों के मन में सम्मान पैदा किया जा सकता है। शिक्षा ही सामासिक संस्कृति और बहुलतावादी राष्ट्रवाद को वैचारिक पृष्ठभूमि व व्यवहारिक नजरिया दे उसे यथार्थ के धरातल पर उतार सकती है। शिक्षा ही एकता और एकरूपता में अन्तर स्पष्ट कर, एकता बनाये रखने हेतु एकरूपता के प्रति दुराग्रही होने से बचने का संदेश आगे बढा सकती है। इसी से देश के अन्दर राष्ट्रवाद के आलोचकों की आंशकाओं का निराकरण भी हो सकता है। राष्ट्रवाद के इसी रूप को प्रतिष्ठित कर हम विदेशी आलोचकों को भी जवाब दे सकते हैं, जो भारत को अपनी राष्ट्रवाद के प्रति एकरूपता प्रधान सोच के कारण राष्ट्र ही नहीं मानते। हमें अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए बहुलता मूलक व समन्वयवादी प्राचीन परम्परा को बनाए रखते हुए सामासिक संस्कृति वाले राष्ट्र की प्राचीन संकल्पना को अपना जीवन दर्शन मानना होगा। इसी से हम आधुनिक राष्ट्र के रूप में भी अपनी पहचान बनाए रख सकते हैं, क्योकि हम प्राचीन काल से जिस समन्वय की बात कर रहे, वह आज आधुनिक राष्ट्र की भी जरूरत बन चुका है।

**निष्कर्ष**

उपरोक्त विमर्ष से स्पष्ट है कि हमारे आधुनिक भारत के विचारकों व व नीति निर्माताओं ने राष्ट्रवाद की पाश्चात्य विचारधारा को न अपना कर एक नए तरह के भारतीय राष्ट्रवाद की नींव रखी, जिसमें एकरूपता की जगह बहुलता को स्वीकृति देने की हमारी प्राचीन परम्परा को स्थान दिया गया। अब हमें अपनी नयी पीढ़ियों को भी इसी अनुरूप शिक्षित करना होगा, और यह काम शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है।

**संदर्भ ग्रन्थ सूची**

*गांधी, मोहनदास कर्मचन्द. हिन्द स्वराज्य. अ.ठा.नाणावटी द्वारा अनुवादित. सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2009.*

*गुहा, रामचन्द्र. भारतः गांधी के बाद. सुशान्त झा द्वारा अनुवादित. पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, 2012.*

*गुहा, रामचन्द्र. भारतः नेहरू के बाद. सुशान्त झा द्वारा अनुवादित . पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, 2012.*

*दिनकर, रामधारी सिंह. सस्कृति के चार अध्याय. लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1956.*

*नन्दी, आशीष. इल्लिजिटिमेसी ऑफ नेशनलिज्म. अभय कुमार दूबे द्वारा अनुवादित. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005.*

*नेहरू, जवाहरलाल. डिस्कवरी ऑफ इण्डिया. रामचन्द्र टण्डन द्वारा अनुवादित. सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 2015.*

*लाल, रमन बिहारी. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक. रस्तोगी प्रकाशन, दिल्ली, 2005.*